ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 288-290

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

नागार्जुन के उपन्यासों में 'लोक जीवन' की विसंगतियों का यथार्थ

डॉ0 अरुण कुमार आर्य

पता– वार्ड नम्बर 9, नगर पंचायत, मुसाफिरखाना, अमेठी (उ0प्र0) भारत

Received-15.03.2023, Revised-22.03.2023, Accepted-27.03.2023 E-mail: anukaran.13@gmail.com

सारांशः ***प्रस्तुत शोध लेख में उपन्यासकार नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित लोक जीवन में व्याप्त विसंगतियों पर विचार किया गया है। उनके द्वारा रचित उपन्यास आंचलिक उपन्यास की श्रेणी में आते हैं। आंचलिक उपन्यासों की प्रमुख विशेषता होती है। उसका यथार्थवादी स्वरूप, जिस प्रकार आंचलिक उपन्यासों की कथावस्तु विशिष्ट आंचलिक समस्याओं से निर्मित होती है, उसी प्रकार इनका आग्रह विशिष्ट, आंचलिक जीवन यथार्थ के प्रति भी रहता है। इनकी निर्मिति में कल्पना का स्थान उतना ही होता है, जितना यथार्थवादी कथा साहित्य के लिए आवश्यक होता है। ''आंचलिक उपन्यासकार जनपद विशेष के जीवन के बीच जाता है या कम से कम समीपी द्रष्टा होता है। वह विश्वास के साथ वहाँ के प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश के समग्र रूपों और प्रगतियों को अंकित कर सकता है, क्योंकि उसने उन्हें अनुभूति में उतारा है।''[1] नागार्जुन के उपन्यासों में मिथिलांचल की समस्याएं लेखक के प्रत्यक्ष अनुभूत या स्वयं की देखी हुई हैं क्योंकि उनका जन्म उसी अंचल के एक सामान्य गाँव में हुआ है। यही कारण है कि अंचल विशेष के जन जीवन, उसकी विधि समस्याओं, राजनीतिक उथल–पुथल, आर्थिक संघर्ष, ग्रामीण प्रेम प्रसंग, लोक कथाएं, लोक गीतों, पर्व–त्योहारों तथा लोक–उत्सवों के माध्यम से लोक चेतना और लोक जीवन का जैसा चित्रण नागार्जुन के उपन्यासों में है, वैसा अन्यत्र प्राप्त नहीं होता है।***

कुंजीभूत शब्द– उपन्यासकार, विसंगतियों, उथल–पुथल, आंचलिक उपन्यास, यथार्थवादी स्वरूप, आर्थिक संघर्ष, कथा वस्तु।

नागार्जुन के उपन्यासों में लोक जीवन की विसंगतियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। अंचल विशेष के रूप में नागार्जुन के सभी उपन्यासों का कथांचल मिथिला अंचल ही है।। मिथिलांचल उत्तरी बिहार का एक क्षेत्र है, जहाँ की अपनी कुछ विशेष सांस्कृतिक–सामाजिक एवं भौगोलिक विशेषताएं हैं। 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में लोक जीवन की जिस विसंगति का यथार्थ चित्रण हुआ है वह है–बहुपत्नीत्व की प्रथा, और कारण गताया गया है,''मिथिला के ब्रह्मणें की कुलीनता। जो जितना कुलीन होता है उसकी दरिद्रता भी उतनी ही बड़ी हुआ करती है।''[2] कुलीन ब्राह्मण अपनी कुलीनता बेच बेच कर अपना पेट पालता है। बहु पत्नीत्व प्रथा एक तरफ तो मैथिल समाज में स्त्रियों की हीन दशा का परिचायक है, तो दूसरी तरफ असामाजिक यौन सम्बन्धों का प्रेरक भी। इन्द्रमणि की दो पुत्रियाँ जनक किशोरी और शकुन्तला, दोनों की शादी बिकोओ से हुई थी, "एक का अपने चचेरे भाई से, दूसरी का कुल्ली राउत के जवान बेटे से स्नेह सम्बन्ध था शकुन्तला के पति की सात शादियाँ थी और जनक किशोरी की पति की दस।"[3]

चाची की 17 साल की पुत्री प्रतिभामा भी कुलीनता की दृष्टि से बहुत ही नीच, मूर्ख और चालीस के अधेड़ ब्राह्मण के साथ ब्याही गई.... ब्याही क्या गयी, बेची गई। "ब्राह्मण ने सात सौ नकद गिनकर उससे शादी की। वह छह महीने के बाद ही गौना करा ले गया, और तब से प्रतिभामा फिर शुभंकरपुर की इस धरती पर पैर नही रख पायी।"[4] असामाजिक यौन संबधों एवं अनैतिकता का ऐसा बोल बाला कि मानवता भी तार–तार हो गई है। स्त्रियोचित गुण समाप्त से हो गये लगते हैं, तभी तो कृतज्ञता के मारे उमानाथ की माँ का जी करता था कि दमयन्ती के पैरों पर अपना सिर रख दे और सुबक–सुबक कर कुछ देर रो ले। यह चतुर बुढिया उस बेचारी को ममता का अवतार प्रतीत हो रही थी। वह विधवा है, अंकिचन है, उसे गर्भ रह गया है। कहीं वह मुँह दिखाने के काबिल नही रही। पेड़–पौधे , पशु–पक्षी सभी गुपचुप उमानाथ की माँ के इस महान कलंक का मानों कीर्तन कर रहे है। ऐसी स्थिति में यदि दम्मो फूफी जैसी सम्भ्रांत वृद्धा उसे सांत्वना देने आई तो इसके बढ़कर व्यवहारिक मानवता भला और क्या होगी? मगर वहाँ तो बीसियों बैठी हैं, दम्मो फूफी अकेली रहती तब न। उमानाथ की माँ को साहस नहीं कि फूफी के पैरों पड़ जाए। लज्जा भी निगोड़ी कैसी होती, कि उसका आंचल घोर से घारे पानी के लिए सुलभ है। स्वर को अधिक से अधिक कोमल करके फूफी ने कहा–"अच्छा कौन था वह कल मुंहाँ, उमानाथ की माँ, जिसने तुम्हे आग में झोंक दिया?" इस असंभावित प्रशन से बेचारी के रोम रोम काँप उठे, समूचे शरीर का लहू पानी–पानी हो गया। विकराल मुँह वाली राक्षसी याद आई, जिसकी कहानियाँ वह बचपन में नाना से सुना करती थी।"[5]

मिथिलांचल में अमर्यादित यौन संबधों और अनैतिकता का ही पारणाम है कि वहाँ पर पारिवारिक सम्बन्ध भी अच्छे नहीं रहे। पति–पत्नी, माता–माता, संतान आदि सभी रिश्तों मे दरार आयी है। 'रतिनाथ की चाची' का उमानाथ अपनी माँ को इसलिए बुरी तरह फटकारता है क्योंकि, वह बेचारी मेहनत मजूरी करके, चर्खा चलाकर जैसे–तैसे अपनी गुजर करती है। बेटे महाजन ने कलकत्ते में नौकरी क्या की मानों अफसर ही बन गये हों। माँ को सहारा देने के स्थान पर उसी के अपने शब्दो

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

में सटीक व्यंग्य करती हुई पँक्तियाँ दृष्टव्य है,– ''चर्खा चलाकर तूने दुनिया भर को बतला दिया है, उमानाथ आवारा है। कलकत्ता में खुद तो मौज मस्ती करता है, और घर पर माँ जूलाहिन हुई जा रही। खबरदार अब कभी चर्खा छुआ तो हाथ कटा लूंगा।"[6]

युग की श्रद्धा भावना आज समाप्त हो चली है और उमानाथ जैसी संताने हो रही है जो मेहनत करने को भी सामाजिक कृत्रिम दम्भ के कारण बुरा समझती हैं। कुछ इसी प्रकार की बात नागार्जुन के अन्य उपन्यास 'नई पौध' में भी देखने को मिलती है। जहाँ टुनाई अपने पिता की संकीर्णताओ से दुःखी है। उसे अपनी बहनों की दुर्दशा रह रहकर कौंधती है, और अनमेल विवाह की सामाजिक कुरीति को समाप्त करने के लिए नवयुवकों का साथ तक देता है, यद्यपि उसके पिता को यह स्वीकार्य नही है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–"टुनाई पहले खुद संभलो, पीछे कड़ी आवाज में उस आदमी को झाड़ दिया–"भंग तो नही पी आये है आप! किसने बताया कि चतुरा चौधरी की शादी हमारे घर हुई है?मेरे पिता जी उन्हें लेकर जरूर आए थे, पर घर के और लोगों को वह जँचे नही। हमारे गाँव मे पढ़े लिखे नौजवानों ने समझा बुझाकर चौधरी जी को विदा कर दिया, उधर लड़की की तबियत एकाएक खराब हो गई थी, कई कारणों से यह ब्याह हुआ नहीं, टल गया।"[7]

अन्य सगे सम्बन्धियों के बीच भी प्रेम निरन्तर घटता जा रहा है। चाहे वह बहन–भाई संबंध हो या जिठानी–देवरानी का और चाहे सास–बहू का। वजह चाहे जो भी रही हो, मँहगाई या स्वार्थवादिता, परन्तु पारस्परिक राग–द्वैष ने इन सम्बन्धों में फीकापन तो ला ही दिया है तभी 'रतिनाथ की चाची' की गौरी अब उमानाथ की पत्नी कमलमुखी के घर पर आने से अच्छे तरह पर्व और त्योहार भी मना नहीं पाती है। गौरी पाँच सेर पकवान बनाने को कहती है तो बहू उनके कान काटते हुए कहती कि ढाई सेर ही काफी रहेगा। खाली सलाह ही नहीं पीछे अपने पति का आदेश भी सुनाती है, "मना कर गये हैं"। गौरी चाची इस घटना से टूट गई। मेहनत मजूरी करने वाली इस औरत ने त्योहार के दिन बड़ी कसक अनुभव की। होली का मजा जाता रहा। आये दिन की कटु घटनाओं का परिणाम यह हुआ कि चाची "बेहद कमजोर हो गई, पतले–पतले होंठ फीके पड़ गये थे। कपार पर नीली–नीली नसें उभर आयीं थी। आँखें धँस गई थी, मानों दो कुओं में दो तारे टिमटिमा रहे हैं। छाती की हड्डियाँ बाँस की फट्टियों की तरह झक झक कर रही थी। पेट और पीठ सटकर एक हो गये थे।"[8]

मनुष्य के जीवन में यौन आवश्यकता अत्यन्त गहन और शाश्वत आवश्यकता है। यौन आवश्यकयता मनुष्य की भूख की तरह है। जिस प्रकार मनुष्य भूखा नही रह सकता, उसी प्रकार वह अपनी यौन आवश्यकताओं की पूर्ति किये बगैर भी नही रह सकता। ष्ख की तृप्ति षेजन में है तो यौन की तृप्ति प्रेम में। वास्तव में यह एक मनोवृत्ति है और इन्ही मनोवृत्तियों से उत्पन्न मानसिकता यौन चेतना है। वर्तमान आंचलिक परिवेश जिस प्रकार तीव्र गति से परिवर्तित हो रहा है, उस रूप में यौन चेतना को भी नये आयाम प्रदान कर रहा है। नागार्जुन के उपन्यासों में किसी अंचल विशेष की यह मनोवृत्ति भी अनेक स्थलों पर चित्रित हुई है और इससे उत्पन्न होने वाली विसंगति का यथार्थ चित्रण भी हुआ है। बुधना चमार की औरत जिसे चोरी–चोरी पेट डालने लिए बुलाया गया है, इस अमानवीय कृत्य के लिए गौरी की माँ की बड़े तीखे स्वरों में लानत–मलानत करती है। बड़ी जाति वालों पर यह व्यंगय तो है ही साथ उसकी वैचारिक स्थिति का भी षन कराता है। बड़ी जाति वालों की अपेक्षा में छोटी जाति वाले जिन्दगी के मूल्यों के समीप है।

बुधना चमार की औरत ठीक की कहती है कि,"हमारी बिरादरी में किसी के पेट से आठ–आठ, नौ–नौ महीने का बच्चा निकाल कर जंगल में फेंक आने का रिवाज नहीं है। ओह! कैसा कलेजा होता है तुम लोगा का! मइया ही मइया।"[9] यह परिवर्तित होते वातावरण व परिवेश की आवाज है, अन्यथा बुधना चमार जैसे की औरत यह सब कह पाती। गाँव के यौन संबंधों में आज विधवा भी सम्मिलित है, उसकी भी शारीरिक आवश्यकता है और वह चोरी छिपे उसे कहीं अपने वश और कहीं पराये वश पूरा करती है। इस सामाजिक परिवर्तन का ही प्रतिफल है, कि 'नई पौध' की विसेसरी भी मनौती माँगती है। "विसेसरी की मनउती यही थी कि आने वाले अगहन में अगर कोई बीस या बाईस साला दूल्हा उसके लिए मिल गया और शादी हो गयी तो वह चाँदी की छोटी से खूबसूरत बसूली (बाँसुरी) गढ़वायेगी सुनार से, उसे बाँके बिहारी कुँवर कन्हैया के हाथों में थमा देगी।"[10]

नागार्जुन के एक अन्य उपन्यास 'वरूण के बेटे' की माधुरी की तो बात ही क्या है?रात की चाँदनी में अपने बाल प्रेमी मंगल को अमराइयों के बीच निर्धारित समय पर मिलने आती है, यद्यपि दोनों की शादी हो जाती है, लेकिन फिर षे अपने संबंधों का निर्वाह करते है। "बेताबी से बलिष्ठ बाहों में कसकर माधुरी को उसने चूम लिया। फिर चूमा और फिर चूमा।"[11] स्वच्छ चाँदनी में जहाँ इतना स्वच्छन्द वातावरण हो तो यौन चेतना आखिर कैसे दब सकती है।

किसी अंचल विशेष के लोक जीवन में व्याप्त विसंगति के रूप में नागार्जुन जी ने जिन यथार्थों का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है उसमें विधवा विवाह को विस्मृत नहीं किया जा सकता। अपने पारम्परिक आदर्शो एव धार्मिक मूल्यों के गौरवपूर्ण स्थल के रूप में षरतीय गाँव हमेशा से ही सर्वमान्य रहे है। परतंत्रता के दिनों में ग्रामीण समाज में अवश्य ही कुछ

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

विसंगतियाँ उत्पन्न हुई, जिनमें सती प्रथा, पर्दा पर्दा प्रथा, बाल–विवाह, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह आदि ऐसी रूढ़ मान्यताएँ बन गई, जिनकी जकड़ में षरतीय नारी बुरी तरह फँस गई। स्त्रियों के इस आन्तरिक संताप एंव समाज की विसंगति को तत्कालीन समाज सुधारकों ने बड़ी गम्भीर दृष्टि से लिया और उसके टूटते स्वरूप को बचाने का प्रयत्न भी किया। विधवा विवाह सती प्रथा के विरोध स्वरूप सामने आया। परिणामस्वरूप पुरानी विसंगतियों का कोहरा धीरे–धीरे छँटने लगा। गाँव की विधवा नारियाँ षि परम्पराओं के बंधनों को तोड़ कर नयी मानसिकता जन्य चेतना से आक्रान्त हुई। नागार्जुन के उपन्याास बलचनमा, नई पौध, उग्र तारा, में इस सामाजिक विसंगति को प्रमुखता के साथ चित्रित किया गया है।

ऐसा नहीं है कि मिथिलांचल में सिर्फ सामाजिक विसंगतियाँ ही हैं, वहाँ पर राजनातिक विसंगतियाँ भी सिर उठा कर बोल रही हैं। स्वातंत्रता के पूर्व मिथिलांचल के लोगों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के प्श्चात का जो स्वप्न देखा था, वह सभी चूर हो रहे हैं। आजादी से पूर्व 'बलचनमा' उपन्यास के अभागे बलचनमा ने जिसके माँ और बाप उसे धरती पर पटक कर स्वर्ग सिधार गये थे, जमींदारों के हाथों अनन्त क्रूर यातनाएं सही। उसने भी एक स्वप्न देखा, उसने भी अपनी कल्पनाओं में आजादी का सुख अनुभव किया था, जिसका विवरण हमें उसकेकथन से प्राप्त होता है। ''मैंने सोचा मुलुक से अंग्रेज बहादुर चला जायेगा, फिर यही बाबू भैया लोग अफसर बनेंगें और तब इस बाबा जी महाराज का भी उद्धार हो जायेगा। .....मोहन बाबू ने यही कहा था कि सोराज होने पर सबके दिन लौटेंगें, सबका भाग्य चमकेगा। हमारा भी तुम्हारा भी।''[12]

सरकारी व्यवस्था की विसंगति नागार्जुन के अन्य उपन्यास 'वरुण के बेटे' में दृष्टिगोचर होती है, जब टुन्नी कोसी योजना में भूंजा फरही बाँधकर मजदूरी करने गया था, वह बेचारा दो दिन का भूखा, कपड़े उतरवा कर ही लौटता है। बाबा बटेसर नाथ' नामक उपन्यास का गाँव 'रूपउली' भी विषम परिस्थितियों से गुजर रहा है। वहाँ भी निरन्तर टूटन की प्रक्रिया प्रारम्भ है। मजदूरों की स्थिति उेसी है कि उन्हें मजदूरी की तलाश में गाँवों से शहरों की ओर जाना पड़ रहा है। एक अन्य उपन्यास 'दुखमोचन' में प्राकृतिक आपदाओं के लोग गाँव में उत्पन्न विसंगति पर गाँव छोड़ने पर मजबूर हो जाते हैं। अधिकांशतः खेत मजदूर रोजी रोटी की तलाश में अपना–अपना इलाका छोड़कर पूरब–पश्चिम जाने वाली रेलगाड़ियों पर सवार हो चुके थे।''[13]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के पश्चात यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि नागार्जुन के उपन्यासों में मिथिलांचल के लोक जीवन की तमाम प्रकार की विसंगतियाँ अपनी यथार्थता के साथ चित्रित हुई हैं। गरीबी, भुखमरी, दरिद्रता, विषाद, अनमेल विवाह, विधवा–विवाह, जमींदारों का अत्याचार, कर्ज और श्रमिकों का शोषण आदि विभिन्न प्रकार की विसंगतियाँ उनकी रचनाओं में अपनी यथार्थता के साथ उपस्थित है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 राम दरश मिश्र– हिन्दी उपन्यासः एक अन्तर्यात्रा, पृष्ठ 115.
2. नागार्जुन– रतिनाथ की चाची, किताब महल, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1966, पृष्ठ 20.
3. वही, पृष्ठ 68.
4. वही, पृष्ठ 136.
5. वही, पृष्ठ 130.
6. वही, पृष्ठ 155.
7. नागार्जुन– नई पौध, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1969, पृष्ठ 313.
8. नागार्जुन– रतिनाथ की चाची, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1966, पृष्ठ 245.
9. वही, पृष्ठ 3.
10. नागार्जुन– नई पौध, किताब महल, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1969, पृष्ठ 92.
11. नागार्जुन– वरुण के बेटे, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1975, पृष्ठ 51.
12. नागार्जुन– नई बलचनमा, किताब महल, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1987, पृष्ठ 164.
13. नागार्जुन– दुखमोचन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1975, पृष्ठ 22.

*****